१८६ गाथा के दो कलश हैं। ३०६ कलश।

देहव्यूह-महीज-राजिभयदे दुःखावली-श्वापदे,
विश्वाशातिकरालकालदहने शुष्यन्मनीयावने।
नाना-दुर्णय-मार्ग-दुर्गम-तमे दृङ्मोहिनां देहिनां,
जैनं दर्शन-मेक-मेव शरणं जन्माटवी-सङ्कटे।।३०६।।

कहते हैं कि यह संसाररूपी अटवी विकट स्थल है। जिसमें **देहसमूहरूपी वृक्षपंक्ति से जो भयंकर है,...** एक देह, दूसरी देह ऐसे अनन्त देह, उनका जो समूह, उसकी पंक्ति-धारा। जैसे वन में वृक्ष की पंक्ति होती है, अटवी में जैसे वृक्ष की पंक्ति का समूह होता है, वैसे संसाररूपी अटवी में इस देहसमूहरूपी वृक्ष की पंक्ति है। एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक देह इसे मिलती ही रहती है। उसमें देहसमूह-देह का पूरा देह। ऐसे **देहसमूहरूपी वृक्षपंक्ति से...** श्रेणी से **जो भयंकर है,...** संसार अटवी। **जिसमें दुःखपरम्परारूपी जंगली पशु (बसते) हैं,...** अटवी में जैसे सिंह और बाघ (होते हैं)। उसी प्रकार दुःख की परम्परा एक के बाद एक... एक के बाद एक... दुःख तो चलते ही रहते हैं। संसार में (कोई) दुःखरहित नहीं है। **दुःखपरम्परारूपी जंगली पशु (बसते) हैं,...** राग-द्वेष की आकुलता, चाहे तो स्वर्ग में हो, नरक में हो, सेठाई में हो, रंकाई में हो परन्तु उसे दुःख की परम्परा (चालू ही है)। उसमें तो जंगली पशु-दुःख की परम्परा है। शत्रु चीर डाले ऐसे पशु हैं। संसार अटवी ऐसी है।

अति कराल कालरूपी अग्नि जहाँ सबका भक्षण करती है,... कराल काल क्षण में सबका नाश कर डालता है। कराल कालरूपी अग्नि वन को जैसे जलाती है, उसी प्रकार यह आत्मा अनेक प्रकार के शरीरादि का नाश कर डालती है। सुविधा और असुविधा सबका कराल काल संसार। संसार दावानल से सुलग रहा है।

जिसमें बुद्धिरूपी जल (?) सूखता है... अन्दर कुछ अशुद्धि है। बुद्धिरूपी जल सूख जाता है। आत्मा का ज्ञान क्या है, उसका इसे भान नहीं। संसार की चतुराई, वह भी आत्मा के ज्ञान को सूखा डालती है। समझ में आया? **और जो दर्शनमोहयुक्त जीवों को...**

जिन्हें श्रद्धा विपरीत है, ऐसे जीवों को **अनेक कुनयरूपी मार्गों के कारण अत्यन्त दुर्गम है,...** कुनय, कुतर्क, कुनय और कुशास्त्र इन रूपी मार्ग के कारण अत्यन्त दुर्गम है। इस अटवी में से निकलना (दुर्गम है)। ऐसी अटवी हो, उसमें जाल, बबूल, काँटे आड़े-टेड़े भरे होते हैं, उसमें से रास्ता निकालना मुश्किल है। उसी प्रकार यह दर्शनमोह जीव को अनेक कुनय, कुतर्कों द्वारा मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। नीचे (फुटनोट में) अर्थ है। **जिसे कठिनाई से लाँघा जा सके ऐसा; दुस्तर।** है। इन चौरासी के अवतार में से निकलना महा दुष्कर है।

(संसार-अटवी में अनेक कुनयरूपी मार्गों में से सत्य मार्ग ढूँढ़ लेना...) अनेक जाल, जंखर, बबूल के काँटे बीच में अटवी में पड़े हों, उसमें से पगडंडी-मार्ग निकालना कि इस मार्ग से शहर में पहुँचा जा सकेगा, ऐसा मार्ग खोजना जैसे महा कठिन है, उसी प्रकार इस संसार की अटवी में भटकते जीव को कुनय मार्ग में से सत्य मार्ग खोज निकालना, सत्य क्या है यह खोजना **मिथ्यादृष्टियों को अत्यन्त कठिन है...** कहीं-कहीं भर जाता है। समझ में आया? विपरीत नय के आशय से एकान्त में या पर्याय में या द्रव्य में या एकान्त भेद में या एकान्त अभेद में भर जाता है, कहते हैं। वस्तु की स्थिति खोजना, इस कुनय के कारण से, बहुत कठिन है। **और इसलिए संसार-अटवी अत्यन्त दुस्तर है।** दुस्तर। तिरना अर्थात् अटवी में से निकलना। कहो, धर्म के नाम से भी अकेले कुनय वर्ते, उसमें से निकलना और सत्य को खोजना बहुत दुस्तर—तिरना-निकलना महामुश्किल है। अहो..!

उस संसार-अटवीरूपी विकट स्थल में... संसाररूपी अटवी का विकट मैदान। आहाहा! **जैनदर्शन एक ही शरण है।** आत्मा का वीतरागी स्वभाव, वह जैनदर्शन। जैनदर्शन ने यह कहा कि तेरा स्वभाव वीतराग आनन्दस्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! वह एक ही शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं है। समझ में आया? ऐसी अटवी में से निकलने के लिये (कि जो) दुर्गम अटवी है (उसमें) एक जैनदर्शन ही शरण है। **एक ही शरण है।** लो! जैनदर्शन एक 'ही' शरण है। दूसरा कोई नहीं? दूसरा कहाँ (कोई है)। आत्मा का वीतरागी स्वभाव, वह जैनदर्शन और उसकी पर्याय की प्राप्ति होना, वह जैनशासन। त्रिकाली आनन्दमूर्ति भगवान वीतरागस्वरूप का शरण—इसका आश्रय, (वह) एक ही उद्धार करने का उपाय है। एक श्लोक हुआ। किसी को ऐसा लगे कि यह तो एकान्त है,

स्वयं जैनदर्शन की बात एकान्त में डालते हैं। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञदेव ने कहा और प्रगट किया, ऐसा यह स्वरूप जैनदर्शन अर्थात् आत्मा, जिसमें राग नहीं, जिसमें संसार है नहीं, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, वह एक ही शरण है। समझ में आया?

श्लोक - ३०७

तथाहि –

(शार्दूलविक्रीडित)

लोकालोकनिकेतनं वपुरदो ज्ञानं च यस्य प्रभो–
स्तं शङ्खध्वनिकम्पिताखिलभुवं श्रीनेमितीर्थेश्वरम्।
स्तोतुं के भुवनत्रयेऽपि मनुजाः शक्ताः सुरा वा पुनः,
जाने तत्स्तवनैककारणमहं भक्तिर्जिनेऽत्युत्सुका।।३०७।।

तथा—

(वीरछन्द)

लोकालोक निकेतन है जिन नेमिप्रभू का ज्ञान शरीर।
जिनकी शंखध्वनि से सारी पृथ्वी अतिशय काँपी थी॥
उनका स्तवन करने में इस जग में सुर नर कौन समर्थ।
अति उत्सुक जिन भक्ति उसमें कारण मैं जानूँ यह अर्थ॥३०७॥

[श्लोकार्थः—] जिन प्रभु का ज्ञानशरीर सदा लोकालोक का निकेतन है (अर्थात् जिन नेमिनाथ प्रभु के ज्ञान में लोकालोक सदा समाते हैं—ज्ञात होते हैं), उन श्री नेमिनाथ तीर्थेश्वर का—कि जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था उनका—स्तवन करने के लिए तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ है? (तथापि) उनका स्तवन करने का एकमात्र कारण जिनके प्रति अति उत्सुक भक्ति है, ऐसा मैं जानता हूँ।३०७।

श्लोक - ३०७ पर प्रवचन

(श्लोक) ३०७।

लोकालोकनिकेतनं वपुरदो ज्ञानं च यस्य प्रभो-
स्तं शङ्खध्वनिकम्पिताखिलभुवं श्रीनेमितीर्थेश्वरम्।
स्तोतुं के भुवनत्रयेऽपि मनुजाः शक्ताः सुरा वा पुनः,
जाने तत्स्तवनैककारणमहं भक्तिर्जिनेऽत्युत्सुका।।३०७।।

उत्सुक, अत्यन्त उत्सुक, अति उत्सुक। अर्थ किया है न। नेमिनाथ भगवान को याद किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्वयं ब्रह्मचारी थे न? बालब्रह्मचारी थे। पद्मप्रभमलधारिदेव बालब्रह्मचारी (थे), इसलिए बालब्रह्मचारी तीर्थंकर को याद किया है।

श्लोकार्थ : जिन प्रभु का ज्ञानशरीर... नेमिनाथ भगवान का ज्ञानशरीर, हों! वह ज्ञान उनका शरीर। **सदा लोकालोक का...** घर है। निकेतन। निकेतन अर्थात् घर। भगवान नेमिनाथ प्रभु, जिनका ज्ञानरूपी स्वभाव शरीर है, वह लोकालोक का घर है अर्थात् लोकालोक को जानने में समर्थ है। लोकालोक जिसमें ज्ञात होते हैं। कहो, शब्द तो ऐसा लिया है। भगवान ज्ञानस्वभाव लोकालोक का निकेतन है। निकेतन अर्थात् रहने का स्थान। ऐई! पण्डितजी। घर है। लोकालोक यहाँ रहता है। इसका अर्थ **नेमिनाथ प्रभु के ज्ञान में लोकालोक सदा समाते हैं—ज्ञात होते हैं),...** ऐसा उनका ज्ञानशरीर है। ज्ञानशरीर। देहशरीर तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। समझ में आया?

श्री नेमिनाथ तीर्थेश्वर का— वे तीर्थेश्वर हैं। तीर्थ के ईश्वर हैं। तीर्थेश्वर—तीर्थ के ईश्वर। तिरनेवाले आत्माओं के भी वे ईश्वर हैं। साधक के वे परमेश्वर हैं, ऐसा कहते हैं। **जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था...** आता है न? नेमिनाथ भगवान और कृष्ण की रानी रुक्मणी। नेमिनाथ भगवान ने स्नान किया, इसलिए वस्त्र निकाल दिया और रुक्मणी से कहा धो दीजिए। रुक्मणी कहते हैं कि तुम कहनेवाले कौन हो? हमें तो हमारे श्री कृष्ण जो शंख की ध्वनि फूंके तो ऐसे द्वारिका को हिला दें, वे पुरुष

भी हमसे नहीं कहते और तुम ? नेमिनाथ भगवान गृहस्थाश्रम में थे। तीन ज्ञान के धनी थे, ऐसा कहा, इसलिए भगवान ने जहाँ शंख था, नाग की शैय्या थी। नाग की शैय्या। पाटी होती है न ? पलंग की पाटी। उसी प्रकार नाग की पाटी थी। ... पोचा, कोमल... ऐसी नाग की शैय्या थी। श्रीकृष्ण को सोने के लिये। नाग की शैय्या। वहाँ गये और वहाँ जाकर शंख लिया, शंख लेकर फूँका, वहाँ तो द्वारिका काँप उठी। शंख फूँका वहाँ आवाज का इतना जोर हुआ, द्वारिका काँप उठी। यहाँ तो पूरी पृथ्वी कम्पयमान कर दी। परन्तु वह पूरा स्थान है, उसे कँपा दिया। शंख हाथ में लेकर फूँका वहाँ।

जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था... लो ! शंख के कारण से फूँक पड़ी, वहाँ पृथ्वी काँप उठी। निमित्त से (कथन है)।

मुमुक्षु : मानना या नहीं मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ सिद्ध कहाँ करना है ? यहाँ तो उन्होंने यह किया, उसमें ऐसा हुआ, इतना सिद्ध करना है। आहाहा ! समझ में आया ?

जिन्होंने शंख की ध्वनि से सारी पृथ्वी को कम्पा दिया था उनका—स्तवन करने के लिए तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ है ? उनका स्तवन करने में तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ हैं ? ऐसी जिनकी शक्ति, (ऐसे) नेमिनाथ भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए, पूर्णानन्द की दशा को प्राप्त हुए, उनकी कौन मनुष्य या देव स्तुति करें ? उनकी अलौकिक चीज़ जहाँ... उसकी पर्याय अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दरूप परिणमित हो गयी है, उसका क्या कहना ? लोकालोक से भी अनन्त गुना काल-क्षेत्र होता तो जान लें, ऐसी जिनकी ज्ञान की पर्याय का परिणमन स्वच्छ और शुद्ध है, उनकी स्तुति करने में कौन समर्थ है। समझ में आया ?

तीन लोक में कौन मनुष्य या देव समर्थ है ? ऐसा कहते हैं। गणधर भी क्या समर्थ है, ऐसा कहते हैं ? **(तथापि) उनका स्तवन करने का एकमात्र कारण जिनके प्रति अति उत्सुक भक्ति है...** लो ! उनके प्रति अतिउत्सुक-उत्साहरूपी भक्ति जगी है, इसलिए करते हैं। आहाहा ! आता है न ? है तो विकल्प, परन्तु वह अशुभ की जब स्थिति न हो तो ऐसा भाव होता है। अन्दर में स्थिर नहीं हो सकता तो ऐसा विकल्प होता है।

मुमुक्षु : न होवे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है। न हो, ऐसा कुछ (नहीं है)। वीतराग पूर्ण हो और न हो? या तो वीतराग हो जाए या अज्ञानी हो जाए। समझ में आया? भाव आता है न? वीतरागता में कितना काल रहे?

कहते हैं कि **जिन के प्रति...** ऐसे वीतरागी भगवान के प्रति, जिनका स्वभाव अकेला वीतराग पूर्ण हो गया। अहो! जैसा उनका स्वभाव था, वैसी व्यक्त दशा प्रगट हो गयी। जिनस्वरूप ही आत्मा था। वीतरागस्वरूप था, वैसा पर्याय में पूर्ण प्रगट हो गया। उनके प्रति **अति उत्सुक भक्ति है ऐसा मैं जानता हूँ।** स्तवन करने का कारण यह एक ही है, ऐसा कहते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। कहो, समझ में आया? आया था न? '**अभक्तिं मा कुरुध्वं**' १८६ में। उसमें से यह निकाला।

अब यह अन्तिम गाथा। १८७।

मुमुक्षु : हे भव्य! अभक्ति न कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति करना। वहाँ तो यह निश्चय भक्ति की बात है। यह व्यवहार भक्ति भी उसमें निकालते हैं।

मुमुक्षु : महापुरुष ऐसे दोष करे, उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष करते हैं ञ्चया, वह आते हैं, होता है। भाव होता है। भाव होता है न, नहीं होता-ऐसा नहीं है। शुभभाव भी व्यवहार से प्रशंसनीय है न! व्यवहार से। निश्चय से अप्रशंसनीय है। ... भाव आते हैं, वे होते हैं।

गाथा-१८७

णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावर-दोस-णिम्मुक्कं।।१८७।।

निजभावनानिमित्तं मया कृतं नियमसारनामश्रुतम्।
ज्ञात्वा जिनोपदेशं पूर्वापर-दोष-निर्मुक्तम्।।१८७।।

शास्त्रनामधेयकथनद्वारेण शास्त्रोपसंहारोपन्यासोऽयम्।

अत्राचार्याः प्रारब्धस्यान्तगमनत्वात् नितरां कृतार्थतां परिप्राप्य निजभावनानिमित्तम-शुभवञ्चनार्थं नियमसाराभिधानं श्रुतं परमाध्यात्मशास्त्रशतकुशलेन मया कृतम्।

किं कृत्वा? पूर्वं ज्ञात्वा अवञ्चकपरमगुरुप्रसादेन बुद्ध्वेति।

कं? जिनोपदेशं वीतरागसर्वज्ञमुखारविन्दविनिर्गतपरमोपदेशम्।

तं पुनः किं विशिष्टं? पूर्वापरदोषनिर्मुक्तं पूर्वापरदोषहेतुभूतसकलमोहरागद्वेषाभावा-दाप्तमुखविनिर्गतत्वान्निर्दोषमिति।

किञ्च अस्य खलु निखिलागमार्थसार्थप्रतिपादनसमर्थस्य नियमशब्दसन्सूचितविशुद्ध-मोक्षमार्गस्य अञ्चितपञ्चास्तिकायपरिसनाथस्य सञ्चितपञ्चाचारप्रपञ्चस्य षड्द्रव्यविचित्रस्य सप्ततत्त्वनवपदार्थगर्भीकृतस्य पञ्चभावप्रपञ्चप्रतिपादनपरायणस्य निश्चयप्रतिक्रमण-प्रत्याख्यानप्रायश्चित्तपरमालोचनानियमव्युत्सर्गप्रभृतिसकलपरमार्थक्रियाकाण्डाडम्बरसमृद्धस्य उपयोग -त्रयविशालस्य परमेश्वरस्य शास्त्रस्य द्विविधं किल तात्पर्यं, सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यं चेति।

सूत्रतात्पर्यं पद्योपन्यासेन प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितं, शास्त्रतात्पर्यं त्विदमुपदर्शयेत्।

भागवतं शास्त्रमिदं निर्वाणसुन्दरीसमुद्भवपरमवीतरागात्मकनिर्व्याबाधनिरन्तरानङ्ग-परमानन्दप्रदं निरतिशयनित्यशुद्धनिरञ्जननिजकारणपरमात्मभावनाकारणं समस्तनयनिचयाञ्चितं पञ्चमगतिहेतुभूतं पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहेण निर्मितमिदं ये खलु निश्चयव्यवहार-

नययोरविरोधेन जानन्ति ते खलु महान्तः समस्ताध्यात्मशास्त्रहृदयवेदिनः परमानन्दवीतराग-सुखाभिलाषिणः परित्यक्तबाह्याभ्यन्तरचतुर्विन्शतिपरिग्रहप्रपञ्चाः त्रिकालनिरुपाधिस्वरूप-निरतनिजकारणपरमात्मस्वरूपश्रद्धानपरिज्ञानाचरणात्मकभेदोपचारकल्पनानिरपेक्षस्वस्थ-रत्नत्रयपरायणाः सन्तः शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतसुखस्य भोक्तारो भवन्तीति।

सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का।
मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा॥१८७॥

अन्वयार्थ : [पूर्वापरदोषनिर्मुक्तम्] पूर्वापर दोष रहित [जिनोपदेशं] जिनोपदेश को [ज्ञात्वा] जानकर [मया] मैंने [निजभावनानिमित्तं] निजभावनानिमित्त से [नियमसारनामश्रुतम्] नियमसार नाम का शास्त्र [कृतम्] किया है।

टीका : यह, शास्त्र के नामकथन द्वारा शास्त्र के उपसंहार सम्बन्धी कथन है।

यहाँ आचार्यश्री (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को प्राप्त करने से अत्यन्त कृतार्थता को पाकर कहते हैं कि सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल ऐसे मैंने निजभावनानिमित्त से—अशुभवचनार्थ नियमसार नामक शास्त्र किया है। क्या करके (यह शास्त्र किया है) ? प्रथम *अवंचक परम गुरु के प्रसाद से जानकर। क्या जानकर ? जिनोपदेश को अर्थात् वीतराग-सर्वज्ञ के मुखारविन्द से निकले हुए परम उपदेश को। कैसा है वह उपदेश ? पूर्वापर दोष रहित है अर्थात् पूर्वापर दोष के हेतुभूत सकल मोहरागद्वेष के अभाव के कारण जो आप्त हैं, उनके मुख से निकाल होने से निर्दोष है।

और (इस शास्त्र के तात्पर्य सम्बन्धी ऐसा समझना कि), जो (नियमसार शास्त्र) वास्तव में समस्त आगम के अर्थसमूह का प्रतिपादन करने में समर्थ है, जिसने नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है, जो शोभित पंचास्तिकाय सहित है (अर्थात् जिसमें पाँच अस्तिकाय का वर्णन किया गया है), जिसमें पंचाचार-प्रपंच का संचय किया गया है (अर्थात् जिसमें ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचाररूप पाँच प्रकार के आचार का कथन किया गया है), जो छह, द्रव्यों से विचित्र है (अर्थात् जो छह द्रव्यों के निरूपण से विविध प्रकार का—सुन्दर

* अवंचक = ठगें नहीं ऐसे; निष्कपट; सरल; ऋजु।

है), सात तत्त्व और नव पदार्थ जिसमें समाये हुए हैं, जो पाँच भावरूप विस्तार के प्रतिपादन में परायण है, जो निश्चय-प्रतिक्रमण, निश्चय-प्रत्याख्यान, निश्चय-प्रायश्चित्त, परम-आलोचना, नियम, व्युत्सर्ग आदि सकल परमार्थ क्रियाकाण्ड के आडम्बर से समृद्ध है (अर्थात् जिसमें परमार्थ क्रियाओं का पुष्कल निरूपण है) और जो तीन उपयोगों से सुसम्पन्न है (अर्थात् जिसमें अशुभ, शुभ और शुद्ध उपयोग का पुष्कल कथन है)—ऐसे इस परमेश्वर शास्त्र का वास्तव में दो प्रकार का तात्पर्य है:—सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य। सूत्रतात्पर्य तो पद्यकथन से प्रत्येक सूत्र में (-पद्य द्वारा प्रत्येक गाथा के अन्त में) प्रतिपादित किया गया है। और शास्त्रतात्पर्य यह निम्नानुसार टीका द्वारा प्रतिपादित किया गया है : यह (नियमसार शास्त्र) [१]भागवत शास्त्र है। जो (शास्त्र) निर्वाण-सुन्दरी से उत्पन्न होनेवाले, परमवीतरागात्मक, [२]निराबाध, निरन्तर और [३]अनंग परमानन्द का देनेवाला है, जो [४]निरतिशय, नित्यशुद्ध, निरंजन निज कारणपरमात्मा की भावना का कारण है, जो समस्त नयों के समूह से शोभित है, जो पंचम गति के हेतुभूत है और जो पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र—परिग्रहधारी से (निर्ग्रन्थ मुनिवर से) रचित है—ऐसे इस भागवत शास्त्र को जो निश्चयनय और व्यवहारनय के अविरोध से जानते हैं, वे महापुरुष—समस्त अध्यात्मशास्त्रों के [५]हृदय को जाननेवाले और परमानन्दरूप वीतराग सुख के अभिलाषी—बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रहों के प्रपंच को परित्याग कर, त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में लीन निज कारणपरमात्मा के स्वरूप श्रद्धान-ज्ञान-आचरणात्मक भेदोपचार-कल्पना से निरपेक्ष ऐसे [६]स्वस्थ रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए, शब्दब्रह्म के फलरूप शाश्वत सुख के भोक्ता होते हैं।

१- भागवत=भगवान का; दैवी; पवित्र।

२- निराबाध=बाधारहित; निर्विघ्न।

३- अनंग=अशरीरी; आत्मिक; अतीन्द्रिय।

४- निरतिशय=जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम; श्रेष्ठ; अद्वितीय।

५- हृदय=हार्द; रहस्य; मर्म। (इस भागवत शास्त्र को जो सम्यक् प्रकार से जानते हैं, वे समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हार्द के ज्ञाता हैं।)

६- स्वस्थ=निजात्मस्थित। (निजात्मस्थित शुद्धरत्नत्रय भेदोपचार-कल्पना से निरपेक्ष है।)

गाथा - १८७ पर प्रवचन

अन्तिम गाथा १८७।

णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावर-दोस-णिम्मुक्कं।।१८७।।

सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का।
मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा॥१८७॥

ऐसा शब्द तो उन चार शास्त्रों में (नहीं आता), इसमें ही आता है। '**मए कदं**' मैंने किया है।

पूर्वापर दोष रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने... यह किया है, ऐसा कहते हैं। इसमें कहीं विरोध नहीं है। **यह, शास्त्र के नामकथन द्वारा शास्त्र के उपसंहार सम्बन्धी कथन है।** नियमसार शास्त्र यहाँ पूरा होता है। **यहाँ आचार्यश्री (श्रीमद्भगवत्कुन्द-कुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को प्राप्त करने से...** शुरु किये हुए कार्य के अन्त के-छोर को पहुँचने से **अत्यन्त कृतार्थता को पाकर कहते हैं...** कृतार्थता को प्राप्त करके, कहते हैं। मैंने कृत किया। जो विचारा था, वह पूरा हुआ। **कि सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल...** टीकाकार तो यह लिखे न! कैसे हैं कुन्दकुन्दाचार्य? **सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल ऐसे मैंने... 'मए कदं'** पूर्वापर जिन का उपदेश सब जाना है, ऐसा कहते हैं। अन्तिम में ऐसा अर्थ आया न? वह पूर्वापर उपदेश मैंने सैकड़ों बार पढ़ा है।

मुमुक्षु : इतने सब शास्त्र पढ़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : आये न वाँचन में।

मुमुक्षु : परन्तु इतने सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने सब क्या हजारों होते हैं। कहो, समझ में आया? बहुत समय होता है शास्त्र स्वाध्याय का तो आवे वह। मुनि को भी स्वाध्याय का काल ध्यान बिना होता है। ध्यान में कितना रह सके? उन्हें स्वाध्याय काल भी होता है। नहीं तो उन्हें

सच्चा ध्यान तो तुरन्त ही आता है। तथापि छठे गुणस्थान में शास्त्र स्वाध्याय का भाव होता है। यह बताते हैं, स्वाध्याय में यह बताते है न। वीतरागता पूर्णानन्द, पूर्ण स्वरूप उसका कारण है, उसका आश्रय है। कहाँ तो वहाँ यह है। भले विकल्प है। समझ में आया? उससे जाया नहीं जाता परन्तु वह बताते हैं यह। समझ में आया? आहाहा!

सैकड़ों परम-अध्यात्म-शास्त्रों में कुशल ऐसे मैंने... यह स्वयं। पद्मप्रभमलधारिदेव। **निजभावनानिमित्त से—**निजभावना के निमित्त से। इसका अर्थ इतना किया **अशुभवचनार्थ..** विकल्प है अवश्य न? शास्त्र बनाने का विकल्प है, वह अशुभ से बचने के लिये, अशुभ को टालने के लिये यह शुभभाव है, इतनी बात है। **अशुभवचनार्थ नियमसार नामक शास्त्र किया है।** नियमसार नाम का यह सिद्धान्त मैंने किया है। **क्या करके (यह शास्त्र किया है)? प्रथम अवंचक परम गुरु के प्रसाद से जानकर।** देखा? **'णच्चा जिणोवदेसं' प्रथम...** यह जाना मेरे गुरु से। गुरु कैसे हैं? कि अवंचक हैं। **ठगें नहीं ऐसे; निष्कपट; सरल; ऋजु।** जैसा स्वरूप था, वैसा कहते थे। समझ में आया? प्राप्त हुए थे, तद्नुसार कहते थे। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। **अवंचक परम गुरु के प्रसाद से जानकर।** प्रसाद (अर्थात्) मेहरबानी से। हमारे परमगुरु प्रभु, उनकी मेहरबानी से यह मैंने जाना, ऐसा कहते हैं, देखो!

क्या जानकर? जिनोपदेश को अर्थात् वीतराग-सर्वज्ञ के मुखारविन्द से निकले हुए परम उपदेश को। जाना। लो, वीतराग-सर्वज्ञ के मुख-अरविन्द। मुखरूपी अरविन्द-कमल, उसमें से **निकले हुए परम उपदेश को** हमने जाना। ठीक! उसे हमने जाना, ऐसा कहते हैं। **कैसे है वह उपदेश? पूर्वापर दोष रहित है...** पहले कुछ कहा और बाद में कुछ (ऐसा नहीं) और विरोध उसमें है नहीं। पूर्व और अपर। पहले और पश्चात्। अपर अर्थात् पश्चात्। पहले और पश्चात्। **दोष रहित है अर्थात् पूर्वापर दोष के हेतुभूत सकल मोहरागद्वेष के अभाव के कारण...** मोह और राग-द्वेष का जिन्हें-वीतराग को अभाव है। उसके कारण उनकी वाणी पूर्वापर दोषरहित ही होती है। ऐसे **जो आप्त हैं उनके मुख से निकाल होने से (वह उपदेश) निर्दोष है।** कैसा है उपदेश? ऐसा कहा न? निर्दोष है। भगवान की वाणी, पहले-पश्चात् विरोध रहित है, इसलिए वह निर्दोष है।

और (इस शास्त्र के तात्पर्य सम्बन्धी ऐसा समझना कि),... यह सिद्धान्त के सार

सम्बन्धी ऐसा समझना कि **जो (नियमसार शास्त्र) वास्तव में समस्त आगम के अर्थसमूह का प्रतिपादन करने में समर्थ है,...** ठीक! यह तो प्रत्येक को होता है न। अष्टसहस्री का कहा नहीं था रात्रि में? तुम थे न। एक अष्टसहस्री में सब आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह।

यह **(नियमसार शास्त्र) वास्तव में...** वापस वास्तव में ऐसा। **समस्त आगम के अर्थसमूह का (आगम का अर्थ) प्रतिपादन करने में समर्थ है,...** सब पदार्थ भगवान ने जो देखे तीन काल-तीन लोक के, सबको कहने में वे समर्थ हैं। इस नियमसार एक में सब आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समयसार, प्रवचनसार सब में आ जाता है। **जिसने नियम-शब्द से...** अब नियमसार का अर्थ करते हैं। **नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,...** लो! नियम-शब्द से। नियमसार है न? विशुद्ध मोक्षमार्ग—शुद्धमोक्षमार्ग—निश्चयमोक्षमार्ग—यथार्थमोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से नियमसार में दर्शाया है। पर की अपेक्षारहित, व्यवहार की भी अपेक्षारहित, ऐसा निरपेक्ष मार्ग विशुद्ध, द्रव्य के आश्रय से प्रगट होनेवाला, ऐसे मोक्षमार्ग को जिसने दर्शाया है। रात्रि में नहीं थे। नहीं? यह प्रश्न रात्रि में हुआ था कि अभूतार्थ है और असत्यार्थ? पर्याय द्रव्य में नहीं है, इसलिए असत्यार्थ है न?

मुमुक्षु : गौण करके...

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में पर्याय गौण करके, द्रव्य में पर्याय गौण करके असत्यार्थ कहा, ऐसा न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यही कहा न! द्रव्य में-ध्रुव में पर्याय है अवश्य। परन्तु उसे गौण करके कहने में आया है। रात्रि में चर्चा हुई थी। पर्याय है, उस पर्याय को गौण करके। द्रव्य की बात ही यहाँ कहाँ है? त्रिकाल द्रव्य जो है, उसमें पर्याय है नहीं, यह बात यहाँ है ही नहीं, उसका यहाँ काम नहीं। त्रिकाल द्रव्य का मुख्यपना बतलाकर जो पर्याय वर्तती है, उसे भी गौण करके 'नहीं' है—ऐसा कहा है। पर्याय है, उसे गौण

करके 'नहीं' कहा। द्रव्य में पर्याय नहीं कि द्रव्य में पर्याय है इसलिए गौण करके कहा, यह बात यहाँ प्रश्न है नहीं। समझ में आया? ऐई! तुम नहीं थे। याद किया था।

असत्यार्थ कहा है, वह तो त्रिकाली द्रव्य की मुख्यता-दृष्टि कराने को पर्याय पर्याय में होने पर भी उसे गौण करके वह पर्याय नहीं है, अविद्यमान है, पर्याय स्वयं अविद्यमान है, वर्तमान अवस्था अविद्यमान है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? मोहनभाई थे या नहीं? फिर कहा था न रात्रि में? यह चलता था या नहीं? याद नहीं रहा होगा। भगवान आत्मा के दो अंश हैं। दो अंश हैं, उनमें एक अंश नहीं, उस अंशरूप अंश नहीं।

मुमुक्षु : अंश में अंश नहीं, पूरी वस्तु में अंश नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका यहाँ प्रश्न ही नहीं है। दो अंश हैं। एक त्रिकाली अंश और एक पर्याय अंश। उनमें त्रिकाली अंश की अपेक्षा से पर्याय अंश स्वयं नहीं है। है वह स्वयं नहीं है। समझ में आया? क्यों नहीं है? पर्याय है तो सही परन्तु उसे वहाँ का लक्ष्य छुड़ाना है और द्रव्य की मुख्यता की दृष्टि कराना है। इसलिए 'है', तथापि वह 'नहीं' है— ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। समझ में आया? ११ वीं गाथा तो...

मुमुक्षु : आप बहुत बार कहते हो कि द्रव्य में पर्याय नहीं है, इसलिए हमें यह दृढ़ हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह बात छेड़ी है। क्यों हीराभाई? हीराभाई ऐसा कहते हैं। परन्तु इन्हें किस प्रकार दृढ़ हुआ? ऐई! चेतनजी! थे या नहीं तुम?

द्रव्य में पर्याय है या नहीं, यह प्रश्न नहीं है।

मुमुक्षु : आप जब कहते हो न, तब इन्हें बहुत आनन्द होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतनजी! ठीक स्पष्टीकरण कराते हैं न।

मुमुक्षु : साक्षी हाजिर है न! साक्षी की गैरहाजिरी में बात नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : रात्रि में कहा था कि जो यहाँ व्यवहार असत्य कहा है, वह पर्याय को ही झूठी कहा है। द्रव्य में पर्याय नहीं है, यह कहते हैं, वह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। द्रव्य में तो पर्याय है ही नहीं। वह तो प्रश्न ही नहीं है। यह तो पर्याय में पर्याय, पर्याय है, उसे 'नहीं', ऐसा कहना है यहाँ तो। क्योंकि त्रिकाल सत्यार्थ का आश्रय लेने के

लिये, उसे मुख्यरूप से करके पर्याय होने पर भी उसे गौण करके वह नहीं है, ऐसा कहने में आया है। उस पर्याय को गौण करके 'नहीं' कहने में आया है। द्रव्य में पर्याय नहीं है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। ऐई! चेतनजी!

मुमुक्षु : सबको बहुत आनन्द आया। सब बात आवे उसमें यह बात आवे तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात जैसी हो वैसी जानना। द्रव्य वस्तु सामान्य है, उसमें तो पर्याय है ही नहीं। यह प्रश्न ही नहीं है। समझ में आया? अब यहाँ तो पर्याय पर्यायरूप से है, भूतार्थ है, व्यवहार वह भूतार्थ है। उसे यहाँ निश्चय से असत्य है, ऐसा गौण करके; अभाव करके असत्य है—ऐसा नहीं। समझ में आया? दिलीप, आया नहीं?

मुमुक्षु : हाँ, जी बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा लो। वृद्ध को समझावे।

मुमुक्षु : वृद्ध कहाँ है? सब समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वृद्ध है न। इनके पिता का पिता था।

११वीं गाथा की क्या शैली है न! वस्तु स्वयं ऐसी ध्रुव नित्यानन्द भूतार्थ-सत्यार्थ-परमार्थ वह वस्तु। बस, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा मुख्यरूप से उसे है, ऐसा कहकर पर्याय को गौण करके 'नहीं', ऐसा कहने में आया है। यह मुख्यरूप से है और पर्याय जो है, उसे गौण करके नहीं है, ऐसा कहने में आया है। कहो, समझ में आया? ऐई! पण्डितजी! हिम्मतभाई! रात्रि में यह आया था। '**ववहारोऽभूदत्थो**' कहना है न? व्यवहार अर्थात् पर्याय। रागादि भले हो, उसे कुछ नहीं, अपने मुख्य पर्याय है। कहा न कि अनित्य पर्याय नहीं ही है, ऐसा मानना तो वेदान्त हो जाएगा। पर्याय पर्यायरूप से नहीं, हों! द्रव्य में नहीं है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....ध्रुव में?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में कहाँ है? यह अंश यहाँ है, वह अंश यहाँ नहीं। यह प्रश्न यहाँ नहीं है। यह अंश यहाँ है, वह अंश नहीं। वह अंश यहाँ नहीं, ऐसा नहीं। वह अंश यहाँ है, वह नहीं। कैसे? मुख्य का आश्रय कराने के लिये उसको गौण करके नहीं है, ऐसा कहकर निकाल डाला। समझ में आया? यह (चर्चा) की थी। रात्रि में बहुत की

थी, नहीं? अभी आज दोपहर में आयेगी तो दोबारा आयेगी। और उसमें याद आ गया। इसमें यह आया न? **विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,...**

मुमुक्षु : दोपहर को अधिक आया। क्योंकि ११वीं गाथा का ही यह विषय है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका ही विषय है। हमारे भीखाभाई ने ठीक जवाब दिया था। पूछा था तो जवाब बराबर दिया था। ... पूछा था।

यह तो सीधी बात है। भगवान आत्मा दो अंश प्रमाण अंश है। दो अंश। एक अंश वर्तमान पर्याय और एक त्रिकाल। वस्तु द्रव्य वह, उसे द्रव्य कहना। पर से भिन्न करने के लिये। अब उसमें से द्रव्य ध्रुव जो मुख्य है, उसे द्रव्य सिद्ध करके, उसका आश्रय लेने के लिये, यह लक्ष्य छुड़ाने के लिये वह पर्याय है, तथापि वह नहीं है, वह नहीं है, यह है; वह नहीं है और यह है—(ऐसा कहा है)। वजुभाई! है? देखो! रात्रि में तुम नहीं थे।

मुमुक्षु : दोपहर में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विचार तो पहले आ गया था। तब और रात्रि में कोई पूछे नहीं और बैठे सब। तब कुछ चलना चाहिए न?

मुमुक्षु : निर्विकल्प समाधि में बैठे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ सूझ पड़ती न हो कि क्या पूछना।

मुमुक्षु : निर्विकल्प समाधि का एक ऐसा अर्थ होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

जिसने नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से दर्शाया है,... स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह इसमें दर्शाया है। नियमसार में तो कारणपरमात्मा को जहाँ-तहाँ वर्णन किया है न! आहाहा! कारणपरमात्मा कहो या द्रव्य कहो। भूतार्थ कहो, सत्यार्थ कहो, कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो। सब एक ही है। आहाहा! कहते हैं, **नियम-शब्द से विशुद्ध मोक्षमार्ग...** देखो! यहाँ मोक्षमार्ग को, निश्चयमोक्षमार्ग को भी विशुद्ध शब्द प्रयोग किया जाता है। विशेष-शुद्ध।

मुमुक्षु : शुभ नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, शुभ नहीं। शुभ नहीं और अकेला शुद्ध भी नहीं। विशेष

शुद्ध। ऐसा **मोक्षमार्ग सम्यक् प्रकार से...** वापस। जैसा है, वैसा दिखाया है।

जो शोभित पंचास्तिकाय सहित है... पंचास्तिकाय से शोभायमान, पंचास्तिकाय का वर्णन भी इसमें भले प्रकार से किया है।

मुमुक्षु : दूसरे परपदार्थ जानने का क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे पर हैं, इसके बिना स्व भिन्न कैसे पड़ेगा? पर को जाने बिना...

मुमुक्षु : पर भिन्न ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न ही है, यह कहाँ इसे लक्ष्य में है। भिन्न है, यह तो वाणी में आया।

यह पंचास्तिकाय और इसकी ज्ञान की पर्याय, पंचास्तिकाय को जानने की पर्याय, इस पर्याय को भी गौण करके इस पर (स्वभाव पर) दृष्टि देना चाहिए। पंचास्तिकाय तो कहीं आगे रह गये। समझ में आया? इसमें सब है, ऐसा कहते हैं।

पंचास्तिकाय... शोभित। पंचास्तिकाय शोभित। **जिसमें पंचाचार-प्रपंच का संचय किया गया है...** देखो! इसमें पहले ज्ञानाचार लिया है। **ज्ञानाचार, दर्शनाचार,...** देखो! पंचाचार प्रपंच अर्थात् विस्तार, उसका संचय अर्थात् रचने में आया है। **जिसमें ज्ञानाचार,...** वहाँ पहला ज्ञानाचार लिया। वहाँ समकित आचार नहीं लिया पहला। समझ में आया? यहाँ पहले ही शब्द में ज्ञान-दर्शन-चारित्र रखा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं ने, नियमसार की शुरुआत में आया न पहला? देखो न! कल बताया था। **'णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं'** कुन्दकुन्दाचार्य के (शब्द) हैं। टीका में भी ऐसा कहा। नहीं तो उस पद की रचना में ऐसा आया हो और ऐसा हो। टीका में ऐसा है कि **ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनों में प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है।** पहले से ही यह भाषा प्रयोग की है न, देखो न! **उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य निज... परिज्ञान, वह ज्ञान है।** जानना तो ज्ञान में आता है न।

यहाँ कहते हैं कि **पंचाचार-प्रपंच का संचय किया गया है...** कितना ढ़ेर पड़ा है, इसमें ऐसा कहते हैं। नियमसार में यह सब वर्णन है। **(अर्थात् जिसमें ज्ञानाचार,**

दर्शनाचार,...) ज्ञान का आचार निश्चय, दर्शनाचार निश्चय। व्यवहार भले हो, वह जाननेयोग्य है। **चारित्राचार, तपाचार...** इच्छानिरोध, **वीर्याचार...** वीर्य के स्फुरणा का आचरण। **पाँच प्रकार के आचार का कथन किया गया है), जो छह, द्रव्यों से विचित्र है (अर्थात् जो छह द्रव्यों के निरूपण से विविध प्रकार का—सुन्दर है),...** नियमसार में छह द्रव्य का वर्णन है।

छह द्रव्यों के निरूपण से विविध प्रकार का—सुन्दर है, सात तत्त्व और नव पदार्थ जिसमें समाये हुए हैं,... लो! सात तत्त्व की व्याख्या है। पुण्य-पाप को आस्रव में समाहित कर दिया है और सात तत्त्व और नौ पदार्थ पृथक करके **जिसमें समाये हुए हैं, जो पाँच भावरूप विस्तार के प्रतिपादन में परायण है,...** उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और पारिणामिक—ऐसे पाँच भावरूप। चार पर्याय और एक गुण। ऐसे **विस्तार के प्रतिपादन में परायण है,...** पाँच भावों में चार पर्याय है। इस पर्याय को ही यहाँ भूतार्थ कहा है। परमपारिणामिकभाव को भूतार्थ, सत्यार्थ (कहा है)।

जो निश्चय-प्रतिक्रमण,... निश्चय प्रतिक्रमण (अर्थात्) अपने स्वरूप में राग से हटकर स्थिर होना। पंच महाव्रत के परिणाम और वह सब व्यवहार क्रियाकाण्ड है परन्तु यह निश्चय होवे उसे। समझ में आया? **सकल परमार्थ क्रियाकाण्ड के आडम्बर से...** अर्थात् पुष्कल निरूपण है, आडम्बर का अर्थ यह है। इसमें बहुत है। समृद्ध है। **(अर्थात् जिसमें परमार्थ क्रियाओं का पुष्कल निरूपण है) और जो तीन उपयोगों से सुसम्पन्न है (अर्थात् जिसमें अशुभ, शुभ और शुद्ध उपयोग का पुष्कल कथन है)...** शुभ किसे कहना, अशुभ किसे कहना और शुद्ध उपयोग (किसे कहना), दो मलिन और एक निर्मल, उसका इसमें पुष्कल वर्णन है।

ऐसे इस परमेश्वर शास्त्र का... लो! ऐसे परमेश्वर-परम ईश्वर। ग्रन्थाधिराज की जगह परमेश्वर शास्त्र (कहा)। ठीक! ग्रन्थराज। परन्तु यह तो ग्रन्थ का परमेश्वर है। आहाहा! **परमेश्वर शास्त्र का वास्तव में दो प्रकार का तात्पर्य है:-** ऐसे परमेश्वर शास्त्र का वास्तव में दो प्रकार का सार है। एक **सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य।** सूत्रतात्पर्य अर्थात् प्रत्येक गाथा में जो कहना है, वह सूत्रतात्पर्य है। **सूत्रतात्पर्य तो पद्यकथन से प्रत्येक सूत्र में (-पद्य द्वारा प्रत्येक गाथा के अन्त में) प्रतिपादित किया गया है।** इस सूत्र में क्या

कहना है ? यह सूत्रतात्पर्य। गाथा में (कहा वह)। **और शास्त्रतात्पर्य...** पूरे सब यह सिद्धान्त शास्त्र इतने सब कहे, उन सबका तात्पर्य। **यह निम्नानुसार टीका द्वारा प्रतिपादित किया गया है....**

यह (नियमसार शास्त्र) भागवत शास्त्र है। लो! भगवती शास्त्र है। **भागवत= भगवान का; दैवी; पवित्र।** भगवान का शास्त्र, लो। दैवी और पवित्र शास्त्र। (भागवत) **जो (शास्त्र) निर्वाण-सुन्दरी से उत्पन्न होनेवाले,...** मोक्षरूपी सुन्दरी परिणति। मोक्षरूपी दशा, आत्मा की परम आनन्ददशा, अतीन्द्रिय आनन्द की अमृतदशा। उसरूपी परिणति से उत्पन्न होनेवाले **परमवीतरागात्मक,...** परम वीतरागस्वरूप **निराबाध,... बाधारहित; निर्विघ्न। निरन्तर और अनंग परमानन्द का देनेवाला है,...** मोक्षरूपी सुन्दरी अर्थात् परिणति, उससे उत्पन्न होनेवाले परम वीतरागस्वरूप निराबाध-अब विघ्न नहीं होता, वापस निरन्तर, अन्तर पड़े बिना। अनंग। **अशरीरी; आत्मिक; अतीन्द्रिय।** आनन्द **अनंग परमानन्द का देनेवाला है,...** अनंग परमानन्द। अनंग परमानन्द-अशरीरी आत्मा का जो परम आनन्द, उसका देनेवाला यह शास्त्र है। समझ में आया ?

और यह शास्त्र **निरतिशय,... जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम;...** अनुत्तम अर्थात् उत्तम में उत्तम। **श्रेष्ठ; अद्वितीय।** वैसे तो अनुत्तम का अर्थ ऐसा होता है, उसके जैसा कोई ऊँचा नहीं है। **निरतिशय, नित्यशुद्ध,...** ऐसा जो भगवान आत्मा, कारणपरमात्मा **निरतिशय,...** उसके अतिरिक्त कोई ऊँचा नहीं है, ऐसा **नित्यशुद्ध, निरंजन निज कारणपरमात्मा की भावना का कारण है,...** पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड आनन्द का अभेद स्वरूप, उसकी भावना का यह कारण है। यह नियमसार उसकी भावना को बताता है। आहाहा! उसे मोक्षमार्ग कहा। समझ में आया ? ऐसी भाषा भी कहीं नहीं है। **जो समस्त नयों के समूह से शोभित है,...** बहुत नयों का वर्णन किया है। जो समस्त नयों का ढ़ेर-समूह से शोभित है। व्यवहार किसे कहना सद्भूत, असद्भूत, उपचार, अनुपचार, निश्चय, यथार्थ, परमार्थ इत्यादि। **जो पंचम गति के हेतुभूत है...** ऐसा यह भागवत शास्त्र है। **पंचम गति के हेतुभूत है...** यह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

जो पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र—परिग्रहधारी से (निर्ग्रन्थ मुनिवर से) रचित है... निर्ग्रन्थ मुनि से रचित है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

वस्त्रवाले ने रचा हो, वह यह नहीं है। पाँच इन्द्रिय के फैलाव से रहित हैं। मुनि अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं और बाह्य में देहमात्र परिग्रह है। लो! निर्ग्रन्थ मुनिवर। उनसे यह रचित है। **ऐसे इस भागवत शास्त्र को जो निश्चयनय और व्यवहारनय के अविरोध से जानते हैं,...** जो यह निश्चयनय और व्यवहारनय का अविरोध। दो को मेल करके-निश्चय यह और व्यवहार यह, ऐसा। **वे महापुरुष—समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हृदय को...** हृदय (अर्थात्) **हार्द; रहस्य; मर्म। (इस भागवत शास्त्र को जो सम्यक् प्रकार से जानते हैं, वे समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हार्द के ज्ञाता हैं।)** इसे बराबर जानते हैं, उसको सब अध्यात्म शास्त्र का हृदय हाथ आ जाता है कि इस जगह यह कहा है, इस जगह इस अपेक्षा से कहा है। **समस्त अध्यात्मशास्त्रों के हृदय को...** मर्म को, उसके रहस्य को **जाननेवाले और परमानन्दरूप वीतराग सुख के अभिलाषी—** परमानन्दरूप वीतराग सुख आत्मा का आनन्द, उसके अभिलाषी।

बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रहों के प्रपंच को परित्याग कर,... मुनि की बात लेनी है न? आहाहा! **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रहों के प्रपंच को परित्याग कर,...** चौदह प्रकार का अन्तरंग और दस प्रकार का बाह्य। परिग्रह के विस्तार को छोड़कर **त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में लीन...** तीनों काल में उपाधिरहित द्रव्यस्वरूप में लीन—स्वरूप में लीन। **त्रिकाल-निरुपाधि स्वरूप में लीन निज कारणपरमात्मा के...** यह वस्तु तीनों काल में लीन ही है, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु तीनों काल में निरुपाधि स्वरूप में लीन है। ऐसा निज कारणपरमात्मा, लो! **निज कारणपरमात्मा के स्वरूप के...** निज कारणपरमात्मा के स्वरूप के, अब यहाँ यह लिया। श्रद्धा-ज्ञान और आचरण। ऐसी जो निरुपाधि तीनों काल में स्वरूप में लीन ही वस्तु है, उसके स्वरूप का श्रद्धान। उसका श्रद्धान, उसका ज्ञान, त्रिकाली कारणपरमात्मा के स्वरूप का श्रद्धान, निज कारणपरमात्मा के स्वरूप का ज्ञान, निज कारणपरमात्मा के स्वरूप का आचरण। आहाहा!

आचरणात्मक भेदोपचार-कल्पना से निरपेक्ष... पहले गाथा में कहा था, पहले शुरु किया वहाँ। तीसरी गाथा में। निरपेक्ष रत्नत्रय... निरपेक्ष भेदोपचार कल्पना। व्यवहार की जो कल्पना, व्यवहार श्रद्धा, वह सब उपचार से निरपेक्ष है। वह है तो निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। उसकी अपेक्षारहित। **ऐसे स्वस्थ रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए,...**

स्वस्थ। आहाहा! निजात्मस्थित, निजात्मस्थित शुद्धरत्नत्रय भेदोपचार कल्पना से निरपेक्ष है। **ऐसे स्वस्थ...** स्व अर्थात् अपने में रहा हुआ। **रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए,...** ठीक! उसमें परायण वर्तता हुआ। **रत्नत्रय में परायण वर्तते हुए, शब्दब्रह्म के फलरूप शाश्वत सुख के भोक्ता होते हैं।** लो! समयसार में अन्तिम लिया। सुख का जाता है। शब्दब्रह्म का। देखो! शब्दब्रह्म का फल यह है। वीतरागी दिव्यध्वनि के शास्त्र का फल यह है। **शब्दब्रह्म के फलरूप शाश्वत सुख...** आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसका यह जीव भोक्ता होता है। समझ में आया? अब इसके चार श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)